आलोचना

त्रैमासिक

अंक 63

अक्टूबर-दिसम्बर 2020

मीडिया के राम / विनीत कुमार

प्रतिलोकवृत्त के रूप में स्त्रियाँ / चारु सिंह

राजकमल

आलोचना

त्रैमासिक

अंक तिरेसठ

अक्टूबर-दिसंबर 2020

सम्पादक

आशुतोष कुमार

संजीव कुमार

सह-सम्पादक

आर. चेतनक्रान्ति

कला सम्पादक

हरीश आनन्द

प्रबन्ध सम्पादक

अशोक महेश्वरी

आलोचना त्रैमासिक 63

संपादकीय

सोचता हूँ, इसलिए अपराधी हूँ : **आशुतोष कुमार** 5

कविता

फ़रीद ख़ाँ की कविताएँ 23

यानी आगे चलेंगे दम लेकर

अप्रतिहत गरज रहा अम्बुधि विशाल : **आशीष त्रिपाठी** 29
इलीना जी : कुसुमादपि कोमल, वज्रादपि कठोर : **अवंतिका शुक्ल** 44
अपनी याद में... : **मुज्तबा हुसैन** 49

स्मरण : तुलसी राम

कुछ भूल गया कुछ याद रहा... : **डॉ. मुन्नी भारती** 55

कहानी

गजब का मुँह : **राकेश तिवारी** 63

आलेख

प्रतिलोकवृत्त के रूप में स्त्रियाँ : **चारु सिंह** 74
मिथक और मुक्तिबोधीय फैंटेसी : लकड़ी का रावण के परिप्रेक्ष्य में : **अनूप बाली** 94
मीडिया के राम : **विनीत कुमार** 104
किसे चाहिए संविधान? : **रमाशंकर सिंह** 127
अनुवाद और विचारधारा : **शीतांशु** 137

किताबनामा

1989 और उसके बाद : **गोपाल प्रधान** 148

समीक्षा

नवजागरण का दलित सन्दर्भ और केरल : **निरंजन सहाय** 159
अन्यापदेश, पैरोडी और प्रति-यूटोपिया : **अवधेश मिश्र** 164
स्वप्न से महरूम कर दिए गए सृजन का द्वंद्व : **अंकित नरवाल** 168
पूर्वग्रहों को पोंछता एक साहित्यिक सफ़र : **अनुपम कुमार** 175

आख़िरी सफ़ा

प्रतिक्रियावादी पलटवार के अवैधानिक गल्प : **संजीव कुमार** 178

समीक्षा

नवजागरण का दलित सन्दर्भ और केरल

निरंजन सहाय

आलोचक निरंजन सहाय बनारस के काशी विद्यापीठ में प्रोफ़ेसर हैं। इनकी विशेष रुचि दलित साहित्य, आधुनिक हिंदी कविता और शिक्षा की समस्याओं में है।
संपर्क : dr.niranjan.sahay@gmail.com

भारतीय नवजागरण के विभिन्न पहलुओं की चर्चा करते समय किसान, मज़दूर, सिपाही, स्त्री, बुद्धिजीवी, वैभवपूर्ण अतीत आदि सन्दर्भों की चर्चा तो ख़ूब हुई, पर क्या नवजागरण की निर्मितियों, मंतव्यों, गंतव्यों और उपलब्धियों के निर्माण में दलितों के प्रतिरोध भी उल्लेखनीय और विश्लेषणपूर्ण संदर्भों के क़ाबिल हैं?

नवजागरण की निर्मितियों को रचने में भक्तिकाल की लोकधर्मी चेतना और पश्चिम से आई मानवतावादी चेतना की आधारभूत भूमिका रही है। इनका सिरा शोषित-पीड़ित श्रमशील दलित अवर्ण जातियों तथा स्त्रियों के संताप और उनके साहित्य से जुड़ता है। पश्चिमी परिदृश्य में अश्वेतों के संघर्ष से उपजे साहित्य से जुड़ता है।

नवजागरण के संदर्भ में कुछ बिंदुओं की अक्सर चर्चा की जाती है—स्वत्व बोध, वैज्ञानिक चेतना, गुलामी का प्रतिकार और समतामूलक समाज का सपना। इन सबका गहरा रिश्ता दलितों के प्रतिकार और उनकी पीड़ापूर्ण अभिव्यक्तियों से है। ज़ाहिर है अभी नवजागरण के विश्लेषण में दलित संदर्भ को ठीक से समझना बाक़ी है। बजरंग बिहारी तिवारी की किताब *केरल में सामाजिक आंदोलन और दलित साहित्य* नवजागरण के दलित संदर्भों को समझने के लिहाज से महत्त्वपूर्ण है।

इस किताब में कई पारंपरिक मान्यताएँ दरकती हुई नज़र आती हैं। आम तौर पर माना जाता है कि दलित साहित्य आंदोलन की शुरुआत मराठी से होती है। केरल का विपुल दलित साहित्य इस मान्यता पर पुनर्विचार के लिए प्रेरित करता है। इतिहास में रुचि रखनेवालों, समाजविज्ञानियों, साहित्य के अध्येताओं और उन पाठकों के लिए यह किताब मूल्यवान है, जो बदलाव के पक्ष में चलनेवाले विभिन्न आंदोलनों से जुड़े हैं।

इस पुस्तक की यात्रा कई तरह से हमें समृद्ध करती है। हिंदी में पहली बार एक ऐसा बेशक़ीमती दस्तावेज़ हमारे हाथ लगता है, जिसकी रौशनी में जातिवादी हिंसा से सर्वाधिक प्रभावित मलयाली समाज के मुक्ति-संघर्षों एवं क्रांतिकारी परिवर्तनों को हम समझ सकते हैं। वर्चस्व को वैध ठहराने के लिए प्रभु वर्ग अनेक प्रकार

के मिथकों की रचना करता है। मलयाली समाज ने परशुराम और वररुचि जैसे मिथकों का अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए इस्तेमाल किया। किताब इसका उद्‌घाटन करती है।

मार्क्सवाद के भारतीयकरण की प्रक्रिया को बरास्ते केरल समझने के लिहाज से भी यह किताब बेशक़ीमती है। साहित्य और आंदोलन के रिश्ते को भी नई रौशनी में देखने के लिए प्रेरित करती है।

किताब में कुल छब्बीस अध्याय हैं। इनमें आरंभिक बीस अध्याय केरल के मिथकीय आख्यानों, ऐतिहासिक विवरणों, राजनैतिक विश्लेषणों, विभिन्न धर्मों की प्रचारात्मक गतिविधियों एवं दलित और स्त्री-मुक्ति आंदोलनों से संबंधित हैं। अंतिम छः अध्यायों में केरल के दलित साहित्य की यात्रा वर्णित है।

लेखक द्वारा की गईं बारह केरल-यात्राओं की सुवास घटनाओं और वैचारिक निष्पत्तियों में साफ़ तौर पर महसूस की जा सकती है। किताब के अंत में छियासठ पृष्ठों में संदर्भ, टिप्पणियाँ तथा अनुक्रमणिका दी गई है।

किताब के आरंभ में पंद्रह पृष्ठों की लंबी भूमिका है। कथादेश में दशकों से प्रकाशित होने वाला 'दलित प्रसंग' स्तंभ हिंदी पत्रिकाओं में अकेला ऐसा स्तंभ है जिसने विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रकाशित दलित साहित्य से हिंदी पाठकों को रूबरू कराया है। स्तंभकार ही इस पुस्तक के लेखक हैं। पुस्तक के निर्माण में इस स्तंभ की भूमिका है। भूमिका में लेखक ने कहा है—'क्योंकि यह सारा लेखन योजना बनाकर क्रमबद्ध रूप में सम्पन्न हुआ है, इसलिए किताब में कालक्रम से बहुत कम विचलन होता दिखाई देगा। इस दृष्टि से यह मेरी पहली किताब है, जो किताब की तरह तैयार हुई है।'

आरंभिक दो अध्याय 'केरल मॉडल में जाति' और 'केरल में दास प्रथा' हैं। ये उन बिसरा दिए गए संदर्भों की पड़ताल करते हैं, जिन्हें केरल के इतिहास के सबसे काले दौर के रूप में याद किया जाता है। इसे जाने बिना केरल के वर्तमान की समग्र समझ बनाना मुश्किल है। जिस केरल मॉडल की देश-विदेश में ख़ूब चर्चा हुई, उस मॉडल के विरोधाभासों का लेखक ने पहले ही पृष्ठ में ज़िक्र किया है।

यह सावधानी लेखक ने बरती है कि वह राजनैतिक उठापटक को विश्लेषण के केंद्र में न आने दे। बस उन संदर्भों से ही वाबस्ता रहे, जिनसे केरल के सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों के दलित सरोकारों को समझा जा सके। लेखक ने यह बात ख़ास तौर पर रेखांकित की है कि उन कारकों पर विचार करने की ज़रूरत है, जिनकी आड़ में प्राचीन और मध्यकालीन युग की जातिगत क्रूरता के साक्ष्यों का दस्तावेज़ीकरण नहीं किया गया।

इस तर्क से लेखक की असहमति है कि धर्मांतरण के पीछे लूटपाट और तलवार की भूमिका थी। यदि ये कारक धर्मांतरण के पीछे होते तब तो सबसे अधिक धर्मांतरण संपन्न सवर्ण जातियों में होता, क्योंकि दलितों और दासों के पास खोने के लिए था ही क्या?

जाति-क्रूरता की अनेक बानगियाँ ऐसी थीं, जिन्हें स्वाभाविक मान लिया गया था। दलित सिर्फ़ लँगोटी पहन सकते थे। अधोवस्त्र अधिक-से-अधिक घुटने तक हो सकता था। दलित औरतों को कमर से ऊपर वस्त्र पहनने की छूट नहीं थी। उनकी अपनी ज़मीन नहीं हो सकती थी। वे छप्पर के सिवा और कोई घर नहीं बना सकते थे। उन्हें मुख्य मार्ग पर चलने की प्रायः मनाही थी।...अगर कोई वर्णधारी उस रास्ते से गुज़रे, तो उन्हें सड़क के किनारे की कँटीली झाड़ियों और कीचड़ में कूद जाना पड़ता था।

भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा केरल के छुआछूत का यह आलम था कि जहाँ अन्य राज्यों में अवर्णों / दलितों के स्पर्श से सवर्ण अपवित्र हो जाते थे, वहीं केरल में वे दलित द्वारा निर्धारित दूरी के उल्लंघन मात्र से अपवित्र हो जाते थे। उदाहरण के लिए पुलयन, वलूवन और परयन (दलित जातियाँ) ब्राह्मणों और नायरों से 72 क़दम की दूरी बनाकर चलते थे। तियन (ईषव) से 64 कदम की दूरी पर रहते थे। अन्य या निम्न जातियों के लोग ब्राह्मणों और नायरों से 24 क़दम की दूरी बनाकर रहते थे। दूरी के समाजशास्त्र का दृढ़ता से पालन किया जाता था।

लेखक ने दासों की कारुणिक स्थितियों का विस्तार से वर्णन करते हुए बताया है कि कैसे समस्त कर्मकांड और मिथकीय आख्यान ब्राह्मण-सर्वोच्चता को न सिर्फ़ प्रकट करते थे, अपितु ब्राह्मण को ईश्वर या उस के दूत के रूप में भी प्रतिष्ठित करते थे। प्रसंगवश दो प्रचलित मिथकीय आख्यानों का उल्लेख ज़रूरी है। दास जातियों चेरुमन, पुलयन, परयन, करवन आदि के बारे में मिथकीय मान्यता है कि ब्राह्मणों के कृषि-कार्यों के लिए परशुराम ने इन जंगली जातियों को उन्हें सौंप दिया, जिन्होंने देवभूमि मलबार में खेती का काम आरंभ किया।

दूसरी मिथकीय मान्यता है कि भगवान शिव ने ऊँची

जातियों की रचना करके सोचा कि शेष धरती का क्या किया जाए, तब पार्वती ने ऊँची जातियों के लिए इन दास जातियों का निर्माण किया।

एक तीसरी मान्यता भी है कि जब परशुराम ने असंख्य क्षत्रियों का वध किया तब बड़ी संख्या में विधवाएँ उनके सामने रोती हुई आयीं। तब परशुराम ने उन्हें कुछ अजनबियों को सौंपा जिनसे पुलयों का जन्म हुआ।

इस तरह पौराणिक और धार्मिक विश्वासों की आड़ में इस घोर अमानवीयता को जायज ठहराया जाता रहा। यह सिलसिला अंग्रेजों के कम्पनी राज में भी जारी रहा। लेखक ने विस्तार से उन जातियों-समूहों का वर्णन किया है, जिन्होंने अपने आर्थिक हितों और श्रेष्ठता के दावों को क़ायम रखने के लिए दास प्रथा को जारी रखा। यहाँ तक कि धर्म-परिवर्तन से भी उन्हें मुक्ति की खुली हवा मयस्सर न हुई।

तीसरे अध्याय का शीर्षक है—'दास प्रथा का अंत'। इस अध्याय में लेखक ने उन लंबे-लंबे संघर्षों के सिलसिलों का वर्णन किया है, जिनमें दमन और उत्पीड़न की परवाह किए बिना दासों ने हिंदू और ईसाई धर्मसत्ता से संघर्ष कर इस प्रथा का अंत करने में सफलता पाई।

सनद रहे, केरल की अमानवीय दास प्रथा से द्रवित होकर केरल को पागलों का देश कहा जाता था। ध्यान रहे, जिस भक्तिकाल ने शोषित, पीड़ित और प्रताड़ित जन को मुक्ति की राह दिखाई, उसकी प्रभाव-व्याप्ति केरल तक नहीं थी। लेखक ने सप्रमाण दर्ज किया है—'दास प्रथा का उन्मूलन वास्तव में तब हुआ, जब इसे जनवरी 1862 में लागू होने वाले इंडियन पीनल कोड से जोड़ दिया गया। इसके पहले दासों की ख़रीद-बिक्री किसी न किसी रूप में जारी थी। भारतीय दंड संहिता में शामिल कर लिये जाने के बाद दास रखना अपराध की श्रेणी में आ गया।'

इतिहास के जघन्यतम काले अध्यायों में एक है—केरल की नायर (दलित, आज उन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग के अंतर्गत रखा जाता है) और चानार स्त्रियों के वक्ष ढँकने की लालसा का द्विज जातियों द्वारा बर्बरतापूर्वक लगातार कुचला जाना। सनद रहे, वक्ष ढँकने का मुद्दा चानारों के लिए 'डिसेंसी' (भद्रता) का नहीं, 'स्टेटस' (स्तर) का था।

बजरंग बिहारी तिवारी ने विस्तार से बताया है कि कैसे 1806 में प्रोटेस्टेंट ईसाइयों के आगमन ने हाशिए के समूहों में सामाजिक अधिकारों की ज़मीन को बरास्ते शिक्षा को मुमकिन किया। द्विज जातियों ने इस मुद्दे पर व्यापक दमन का रास्ता अख़्तियार किया, जिसे अधिकांश देशी और विदेशी शासकों ने जायज ठहराया। धीरे-धीरे विभिन्न दलित जातियाँ एकत्रित हुईं और द्विज जातियों और दलितों के बीच आक्रमण और प्रत्याक्रमण के सिलसिले शुरू हुए। दोनों तरफ़ के जनसमूहों ने बस्तियों में आग लगाई और हत्याओं के दौर लम्बे समय तक चले।

अंतत: इस अमानवीय प्रथा की हार हुई। दस्तावेज़ों के आधार पर विश्लेषण के बाद लेखक ने दर्ज किया—'राजा मार्तंड वर्मा (उत्तरम पेरुमल) ने 26 जुलाई 1859 को एक नया प्रोक्लेमेशन जारी कर हिंदू चानार स्त्रियों को ईसाई चानार स्त्रियों की तरह अपना वक्ष ढँकने की इजाज़त दी।' भारतीय इतिहास में स्त्री-मुक्ति के इस स्वर ने जो इतिहास रचा, उसके दो पहलू साफ़ तौर पर उभरते हैं। एक तो यह कि तथाकथित महानता के दावे की पड़ताल की जाए। दूसरे, संघर्ष की उस विरासत को भविष्यदृष्टि के निर्माण के सबक के रूप में सँजोया जाए।

योहन्नान पर आधारित अध्याय का शीर्षक है, 'सांस्कृतिक अभ्युत्थान के नायक पोयकयिल योहन्नान'। हिंदी भाषियों के लिए अपरिचित अप्पचन, जिन्हें एक व्यापक मलयाली जनसमूह ने पोयकयिल योहन्नान के रूप में जाना, अय्यनकाली के समकालीन थे।

अय्यनकाली जहाँ दृष्टिकोण में भौतिकवादी थे, वहीं योहन्नान धार्मिक रास्ते को मुक्ति की संभावना के रूप में स्वीकारते हैं। इन्होंने बाइबिल का अध्ययन कर, मोहक शैली में उपदेश देकर, दलित ईसाइयों को आकर्षित किया।

ईसाई मिशनरियों के मन में धीरे-धीरे यह धारण बैठ गई कि योहन्नान 'मिथ्या उपदेशों' से 'पिछड़े वर्गों' में 'बड़ा भारी उपद्रव' पैदा कर रहा है। ईसाई दलितों की कारुणिक स्थितियों का पर्दाफाश करते हुए योहन्नान ने एक अलग संगठन 'प्रत्यक्ष रक्षा देव सभा' की स्थापना की।

योहन्नान का ऐतिहासिक महत्त्व इस तथ्य में है कि उसने दलित ईसाइयों के पीड़ा और मुक्ति के सिलसिले में मौलिक ढंग से विचार किया। बेशक योहन्नान की अनेक सीमाएँ भी थीं। यह अकारण नहीं है कि मलयाली और हिंदी संसार में योहन्नान के हवाले एक साम्य की ओर भी लेखक ने इशारा किया है, जिसका उल्लेख करना मौज़ूँ होगा। दरअसल विविध दलित संदर्भों और ख़ासकर दलित साहित्य पर विचार करनेवाले आलोचक जाने-अनजाने विमर्श के अप्रिय लेकिन मौज़ूँ सवालों से किनारा कर लेते

हैं, जबकि किसी वैचारिक मुहिम की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसमें आत्मालोचन की प्रक्रिया सम्पन्न हुई है या नहीं।

बजरंग बिहारी तिवारी की पारखी नज़र योहन्नान के बहाने धर्मवीर पर भी जा टिकती है। बकौल लेखक, 'हमारे प्रबुद्ध पाठक हिंदी के एक स्वघोषित आजीवक विचारक डॉ. धर्मवीर की कुछ केंद्रीय स्थापनाओं पर श्रीकुमार गुरुदेवन (योहन्नान) और प्रत्यक्ष रक्षा देव सभा का निर्णायक असर और उनकी विमर्शपरक शब्दावली में आश्चर्यजनक साम्य देख सकते हैं। उदाहरण के लिए, ईश्वर की अनिवार्यता, दलित ईश्वर की अवधारणा, अभिशप्त इतिहास, गुलामी का इतिहास, दलित स्त्री पर दोषारोपण, उसे दलित क़ौम की गुलामी का कारण बताना, स्वयं को ईश्वर के रूप में प्रस्तावित करना-करवाना आदि। अगर यह समानता मात्र संयोग नहीं है तो मूल स्रोत का हवाला देना अकादमिक ईमानदारी के तर्क से ज़रूरी ठहरता है और विचारक के मौलिक चिंतन पर सवालिया निशान लगा देता है।' हर व्याख्या की पुनर्व्याख्या समझ के दायरे को विस्तृत करती है।

मलयाली जाति-व्यवस्था की जटिलताओं को तब तक समझना नामुमकिन है जब तक हम भूस्वामी और उनसे संबंधित दलित जातियों के रिश्ते को न समझें। यह भी समझना ज़रूरी है कि केरल में भूमि हदबंदी और भूमिहीन दासों तक भूमि के स्थानान्तरण की ऐतिहासिक प्रक्रियाएँ क्या रहीं। इस लिहाज से किताब के चार अध्याय उल्लेखनीय हैं—'सामाजिक पदानुक्रम और भू-संबंध', 'भूमि-सुधार के आयाम', 'जड़ीभूत सामाजिक संबंध और भूमि सुधार' तथा 'भूमि-सुधार का हासिल'।

लेखक ने दर्ज किया है कि कंपनी सरकार ने जो प्रयत्न भूमि सुधार हेतु किए उनसे सामंती संरचना और मज़बूत हुई। भूस्वामियों के लिए, असामियों को बेदख़ल कर देना आम बात थी। कम्युनिस्टों ने इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास किए। लेखक का मानना है कि वे पूरी तरह से कम्युनिस्ट मॉडल इसलिए नहीं लागू कर पाए कि संवैधानिक दायरे से बँधे हुए थे। लेकिन कम्युनिस्टों ने इस संरचना में आमूल-चूल बदलाव को संभव किया। उन्होंने तीन एजेंडे निर्धारित कर उन पर अमल करना आरंभ किया—

क) भूमिहीनों को भू-संपन्न बनाना यानी वर्ण-वर्ग की जुगलबंदी तोड़ना। जन्मी (भूस्वामी) निर्विवाद रूप से द्विजातीय सवर्ण थे, जबकि भूमिहीन पिछड़े (शूद्र) और दलित।

ख) सामंती या जन्मी व्यवस्था का ख़ात्मा करना : यह ख़ात्मा प्रदेश सरकार को संसदीय मर्यादाओं के अंतर्गत रहकर करना था। संवैधानिक मार्ग का उल्लंघन सरकार ने लगभग नहीं किया।

ग) कृषि उत्पादकता में वृद्धि करना : यह उत्पादकता जोतदार को ही भूस्वामी बनाकर बढ़ाई जा सकती थी, 'जोतने वाले के नाम खेत' का नारा इसलिए दिया गया।

सरकार ने उक्त दिशाओं में अमल करना शुरू किया, अनेक तरह की बाधाएँ भी आयीं। पर उल्लेखनीय बात यह रही कि बरसों से जड़ीभूत व्यवस्था में दरारें बनीं जिनसे समानता की कोंपलों ने अँखुआना शुरू किया। 'दलित जीवन में बदलाव' शीर्षक अध्याय में ऐसी ही उपलब्धियों का विश्लेषण किया गया है।

अंतिम छः अध्यायों में केरल के दलित साहित्य के विभिन्न संदर्भों का विश्लेषण किया गया है। लेखक ने बताया है, 2008 में तमिल, तेलुगु और कन्नड़ दलित साहित्य के अध्ययन क्रम में मलयालम दलित साहित्य से परिचय हुआ। इस क्रम में लेखक ने शुरुआती दौर में दो हफ़्ते कालिकट, एरणाकुलम, कोट्टयम और त्रिशूर की यात्रा की। अनेक अध्ययन स्रोतों, विशेषज्ञों और विश्लेषणों के बाद जुलाई 2010 में *कथादेश* के 'दलित प्रश्न' के अंतर्गत मलयालम दलित साहित्य पर लेखक का पहला लेख प्रकाशित हुआ। डॉ. एच. बालासुब्रह्मण्यम से मलयालम सीखने के प्रयास का भी बजरंग जी ने ज़िक्र किया है।

इक्कीसवें अध्याय का शीर्षक है, 'मलयालम गीतों में दलित प्रतिरोध'। मलयालम भाषा की दो प्रारंभिक शैलियाँ हैं—'पाट्ट शैली' और 'मणिप्रवाल शैली'। पाट्ट शैली का संबंध लोकजीवन और श्रम से है, जबकि मणिप्रवाल शैली का संबंध संस्कृत और तमिल से है, जिसका झुकाव श्रृंगार की ओर है। कहना न होगा मलयालम दलित साहित्य का संबंध पाट्ट शैली से है।

मलयालम दलित साहित्य की तीन अवस्थाएँ हैं। पहली अवस्था में जाति की समस्याओं और समाधान के साथ ही धर्मांतरण से जुड़े मसलों पर विचार है। इस दौर के रचनाकारों में पोत्तेरो कुम्पु और पं. करुप्पन जैसी शख़्सियतें शामिल हैं। दूसरी अवस्था में विवादी स्वरों की मौजूदगी दिखती है। टी.के.सी. वटुतला जैसे साहित्यकारों ने बताया कि धर्मांतरण

रास्ता नहीं है। इस दौर पर वामपंथी विचारधारा का प्रभाव है। कल्लड शशि, कल्लर सुकुमारन, पॉल चिरक्करोड जैसे रचनाकार इसी दौर में हुए। तीसरे दौर में अस्मितावादी विचारों की केंद्रीयता रही। इस दौर में धर्मांतरण और साम्यवाद, दोनों पर सवाल उठाए गए। बौद्ध धर्म और आंबेडकर का प्रभाव इस दौर के दलित साहित्य पर प्रमुख रूप से पड़ा।

'दलित काव्य का प्रथमोत्थान' अध्याय में लेखक ने के.के. गोविंदन आशान के कविकर्म और संगठनकर्ता रूप की विवेचना करते हुए उनकी कृति 'अरुकोला कांडम' का विश्लेषण किया है। कल्लट शशि को भी इसी दौर का साहित्यकार कहा जा सकता है। उनकी कृति 'इंडियायुदे मकल' (भारत की बेटी) दलित स्त्री अम्मिनी के माध्यम से स्वाधीन देश में दलितों की नई पीढ़ी के दर्द को उभारती है। कल्लर सुकुमारन, वी.के. नारायणन, मूनतूर कृष्णन, के.के. दास जैसे कवियों की रचनाओं ने दलित जीवन की पीड़ाओं और आकांक्षाओं को प्रकट किया।

इसी दौर में राघवन अत्तोली ने कम्यूनिस्टों को ब्राह्मणवाद का साथी मानते हुए अनेक कविताएँ लिखीं। 'दलित कविता का समकाल' में लेखक ने अस्मितावादी दलित कवियों के साक्ष्य पर अपने समय की दलित आकांक्षाओं और विश्लेषणों को बरास्ते दलित साहित्य को स्पष्ट किया है।

पुस्तक का एक उल्लेखनीय अध्याय है, 'दलित कविता का विस्तार : स्त्री स्वर'। बजरंग बिहारी तिवारी का मानना है कि मलयालम दलित साहित्य का स्त्री स्वर अपेक्षाकृत प्रौढ़ है। बकौल बजरंग, 'दो पीढ़ियों यानी चार दशकों के बाद वहाँ एक "वाद" के रूप में दलित स्त्री साहित्य आया। तब तक बहुत कुछ निथर चुका था। दलित स्त्री साहित्य इसीलिए गुणवत्ता के मामले में इक्कीस ठहरता है और स्थापित साहित्यिक मानकों को गंभीर चुनौती दे पाता है। मलयालम के दलित साहित्यांदोलन में स्त्रियों की रचनाशीलता इसी तरह की है।' वलसला बेबी, के.के. निर्मला, पुष्पा जॉय, अंबिका प्रभाकरन, विजिला, प्रवीणा के.पी., रम्या धन्या एम.डी. आदि की कविताओं में प्रकट विविध स्वरों का विश्लेषण आलोचक ने मानीख़ेज तरीक़े से किया है।

'दलित उपन्यास का उदय और विकास' अध्याय में मलयालम के *घातकवधम* उपन्यास से चर्चा शुरू की गई है। पुलयों की दुर्दशा पर आधारित उपन्यास, कुम्पु रचित *सरस्वतीविजयम* की चर्चा लेखक ने की है। टीकेचात्तन वटुकला ने वास्तविक दलित उपन्यास-लेखन शुरू किया जिन्होंने अस्मिताबोध को अपना प्रमुख विषय बनाया। लेखक ने पॉल चिरक्करोड के उपन्यासों में निहित कथानकों को उजागर किया है, जिनमें उन पुलयों की मनोदशाओं का वर्णन है जो इसाई बने। *पुलय यत्तरा* (पुले की झोंपड़ी), *वेलिचम* जैसे उपन्यास पॉल की प्रसिद्धि के कारण बने। डी. राजन, एस.ई. जेम्स, करिक्कम राजन, पेरुम्बलम माधवन, कवियूर मुरली आदि के उपन्यासों में निहित दलित चेतना का लेखक ने बख़ूबी वर्णन किया है। मलयाली दलित चेतना का, बरास्ते दलित कहानी एवं अन्य विधाएँ, भी लेखक ने वर्णन और विश्लेषण किया है।

उम्मीद है, लेखक अगले संस्करण में उन पक्षों को भी शामिल करेंगे जिनकी कमी खलती है, जैसे—मलयालम दलित आलोचना और साहित्येतिहास लेखन, जिसे वे मलयालम का उर्वर लेखन पक्ष स्वयं स्वीकारते हैं। इसी तरह मलयालम दलित साहित्य के भाषा और सौंदर्य पक्ष पर बातचीत का अभाव भी कचोटता है। दलित साहित्य और ग़ैर-दलित मलयालम साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन पक्ष भी विचार के लिए आमंत्रित करता नज़र आता है। फ़िलहाल हिंदी में ऐसी सुव्यवस्थित आलोचना यात्रा के लिए लेखक की यह कृति अनेक तरह से बेहद महत्त्वपूर्ण मानी जा सकती है।

('केरल में सामाजिक आंदोलन और दलित साहित्य', लेखक—बजरंग बिहारी तिवारी, नवारुण प्रकाशन, गाजियाबाद)